साहित्यसुधा
साहित्यकारों की वेबपत्रिका
साहित्यकारों की रचना स्थली
वर्ष: 3, अंक 52, जनवरी(प्रथम) , 2019

दलितों के जीवन से सीधा साक्षात्कारः हिन्दी दलित आत्मकथाएँ: एक मूल्यांकन

डॉ० धीरज भाई वणकर

पुनीता जैन वीरांगना सावित्रीबाई फूले राष्ट्रीय फैलोशिप से सम्मानित साहित्यकार हैं। 'विद्यानिवास मिश्र और उनके ललित निबंध' उनकी प्रसिद्ध पुस्तक है। 'हिन्दी दलित आत्मकथाएँः एक मूल्यांकन' , उनका सद्य प्रकाशित महत्त्वपूर्णष्विवेचन ग्रंथ है। हिन्दी दलित आत्मकथाओं पर गहन अध्ययन को प्रस्तुत करने वाली यह किताब अनूठी है। लेखिका ने प्रस्तुत विवेचन, ग्रंथ के प्रथम खण्ड 'दृष्टि' के अन्तर्गत हिन्दी दलित आत्मकथाओं की पृष्ठभूमि, वैचारिकी, सौन्दर्यमूल्य एंव दलित आत्मकथाओं में स्त्री की अवस्थिति को चिन्हित करने का प्रयास किया है। दूसरे खण्ड 'अन्तपाठ' के अन्तर्गत 2017 तक प्रकाषित हिन्दी की तमाम दलित आत्मकथाओं का मूल्यांकन प्रत्येक कृति के द्वारा उपलब्ध कराये गये मानक द्वारा करने का सराहनीय प्रयास किया गया है। वाकई यह किताब बड़े श्रमसाध्य के साथ प्रकाषित की गई है। गैरदलित होते हुए भी पुनीता जी ने मानों स्वयं यातनाएँ-पीड़ाएँ भोगी हो ऐसा विवरण प्रस्तुत किया है। दलित विवेचन ग्रंथों की समृद्धता की अगली कड़ी 'हिन्दी दलित आत्मकथाएँ:एक मूल्यांकन' है । जो दलितों के दर्द, आपबीती से सीधा साक्षात्कार कराती हैं।

दरअसल दलित साहित्य 'आह' का साहित्य है, 'वाह' का नहीं। आज दलित साहित्य ने अपनी जगह बना ली है इसका कारण है स्वानुभूति, यथार्थ का चित्रण । दलित चिंतन की सर्वाधिक सशक्त विधा है आत्मकथा। इस आत्मकथा विधा ने एक नये अनुभव हमारे सक्षम रखे हैं। एक बात जाहिर है कि मराठी दलित आत्मकथाएँ दमदार है। मराठी दलित आत्मकथाओं से प्रेरणा लेकर हिन्दी दलित साहित्यकारों ने आत्मकथाएँ लिखी और प्रसिद्धि प्राप्त कीं। दलित -लेखन अपने आप में बड़े साहस का काम है। इस रूप में साहस का कि इसमें आत्मप्रषंसा, आत्मष्लाघा, निजानंद, सिर्फ मनोरंजन या सस्ती लोकप्रियता की बजाय आत्मलोचना से लेकर आत्मपरीक्षण आदि से गहरा ताल्लुकात रहता हैं। वस्तुतः दलित आतमकथाएँ 'आप बीती' के जरिए आलोचना धर्मिता को हमारे सामने लाती हैं। यहाँ लेखिका के दलित समाज एवं उससे जुड़े लेखन के प्रति रहे उनके गहरे सरोकार से हमें रू-ब-रू होने का अवसर प्राप्त होता है। लेखिका का कथन है - ''पीड़ा व करूणा का जो अर्थबोध इन आत्मकथाओं से गुजरते हुए मुझे हासिल हुआ वह दृष्टि सम्पन्न होने तथा जीवन व विचारों में संरक्षित करने हेतु पर्याप्त है। इस प्रस्तुति का ध्येय दलित पक्ष को देखने का एक निष्पक्ष किन्तु सकारात्मक नज़रिया भर रचना है।' ' दलित साहित्य व मानवता की पक्षधर विचारधाराओं में रहे अटूट विष्वास ने डा॰. पुनीता जैन को इस दिषा में प्रवृत्त किया है। प्रस्तुत विवेचन ग्रंथ इसका परिचायक है।

'दृष्टि' के प्रारंभिक लेख 'हिन्दी दलित साहित्य की पृष्ठभूमि' में बड़े विस्तार के साथ दलित शब्द की व्याप्ति को उजागर करते हुए यह स्पष्ट किया है कि भारतीय संस्कृति एवं साहित्य की लंबी यात्रा में अछूतों की वाणी का अदृष्य रहना यक्ष प्रष्न है। हालांकि इस चुप्पी को तोड़ने का काम दलित साहित्य ने किया है। दलित साहित्य तो मनुष्य को सर्वोपरि मानता है। 'हिन्दी दलित आत्मकथा का परिदृष्य' में मराठी दलित आत्मकथाओं का जिक्र करते हुए हिन्दी की पहली दलित आत्मकथा मोहनदास नैमिषराय कृत 'अपने-अपने पिंजरे' से लेकर वर्ष 2017 में प्रकाषित रजनी तिलक की आत्मकथा 'अपनी जमी अपना आसमां' जैसी आत्मकथाओं का सारगर्भित आस्वाद भी कराया है। सौन्दर्यमूल्य के अन्तर्गत 'मुर्दहिया' ने यर्थाथ की प्रस्तुति हेतु अनुभूति के साथ कलात्मकता का बेजोड़ सन्तुलन बनाया है। परम्परागत सौन्दर्यमानकों से अलग इस कृति ने अपने स्वतंत्र मानक गढ़े हैं। जहाँ तक इन आत्मकथाओं के समाज वैज्ञानिक पक्ष पर नजर डाले तो जातिगत भेदभाव, अन्याय, असमानता, सामाजिक, सांस्कृतिक बुराई है। इस सामाजिक संरचना के पीछे धार्मिक सत्ता एवं आर्थिक व्यवस्था का हाथ रहा है। सामाजिक विद्रूपताओं से निर्मित व्यक्ति या समुदाय के मनोविज्ञान की समझ को भी ये आत्मकथाएँ रेखांकित करती हैं। हिन्दी की 'दलित आत्मकथाएँ और स्त्री' के अन्तर्गत लेखिका ने दलित आत्मकथाओं में स्त्री की स्थिति को सूक्ष्मता से स्पष्ट करते हुए दलित स्त्री की व्यथा को सशक्त तरीके से प्रस्तुत किया है।

प्रस्तुत किताब में लेखिका ने लगभग दो दर्जन आत्मकथाओं के विभिन्न पहलुओं पर समीक्षा की है । पुनीता जैन ने ओम प्रकाश वाल्मिकी कृत 'जूठन' (भाग-1) आत्मकथा को प्रतिपक्ष का मुखर स्वर कहा है। सन 1997 में प्रकाषित यह आत्मकथा लेखन के क्षेत्र में महत्वपूर्ण कदम था इसमें असहय व्यथा-कथा को लिपिबद्ध किया गया है। वस्तुतः यह हिन्दी में अब तक लिखित किसी दलित साहित्यकार की सर्वाधिक सशक्त, तथ्य एवं सत्य से परिपूर्ण आत्मकथा है। वाल्मीकि जी ने 'जूठन' के माध्यम से भारतीय समाज, संस्कृति, धर्म और इतिहास में पवित्र तथा उत्कृष्ट समझे जाने वाले तीन प्रतिकों षिक्षण संस्था, षिक्षक तथा प्रेम पर कड़ा प्रहार किया है। आत्मकथा के आरंभ में दलित बस्तियाँ के परिवेश का चित्रण ध्यानाकर्षक है। परदों में रहने वाली महिलाओं की घूंघट काढ़े सार्वजनिक, खुले स्थानों में निवृत होने की विवशता, चारों ओर फैली गंदगी, दुर्गन्ध, तंग गलियाँ, घुमते सूअर, नंग-धड़ंग बच्चे, रोज की कहा सुनी-लड़ाइयाँ आदि का वास्तविक चित्रण हैं। हमारे देश में कुत्ते-बिल्ली, जानवर कहीं भी घूम-फिर सकते हैं, उन्हें छूने से पाप नहीं लगता बल्कि मनुष्य को छूने से पाप लगता है। जाति परछाई बनकर दलित का पीछा नहीं छोड़ती । आत्मकथा जूठन के संबंध में लेखिका कहती है - '' 'जूठन' में अनेकों प्रसंग एवं घटनाएँ मिलती है जो ब्राहमणवादी पोषकों के जातिवादी चरित्रों , रीति-रिवाजों, परंपराओं तथा प्रथाओं के खिलाफ बगावत का संकेत देती हैं।' ' 'जूठन' (भाग-2) का प्रकाशन ओमप्रकाश वाल्मीकि की मृत्यु के बाद 2015 में हुआ है। इसे पुनीता जी ने 'दलित चेतना का बदलता स्वर' कहा है। इसमें देहरादून, जबलपुर, षिमला एवं इलाज के दौरान दिल्ली में बिताये गये समय की कथा है। दूसरे खंड के प्रारंभ में ही स्पष्ट हो जाता है कि आत्मकथा के इस भाग में

शहरी, षिक्षित तथा कथित योग्य तथा आधुनिक लोगों की जातिवादी मानसिकता का स्वर मुख्य है । वस्तुतः श्रेष्ठता बोध एक मानसिक स्थिति है, जो गाँव हो या शहर, षिक्षित हो या अषिक्षित सभी मे ंसमान रूप से देखी जा सकती है।

हिन्दी दलित आत्मकथा लेखन में महिला लेखिकाओं की उपस्थिति कम है। लेखिका का कथन है- ‘‘मराठी’ आत्मकथाओं की तुलना में हिन्दी में दलित लेखिकाओं की उपस्थिति नगण्य है। जो दर्षाती है कि दलित स्त्रियों का संघर्ष , पीड़ा और अन्य जमीनी सच्चाईयों का लेखन में आना अभी शेष है। दलित लेखन में अपनी न्यूनतम उपस्थिति के कारण भी दलित स्त्री की पारिवारिक, सामाजिक और सांस्कृतिक स्थिति उसे लैंगिक व जातिगत पहचान से इतर मनुष्य रूप में देखने का आग्रह करती है।’ ’ अब तक तीन दलित महिलाओं की आत्मकथाएँ मिली है। कौशल्या बैसंत्री कृत- ‘दोहरा अभिषाप’ , सुशीला टाकभौरे रचित ‘षिकंजे का दर्द’ और रजनी तिलक कृत ‘अपनी जमीं, अपना आसमां’ । यह सर्वविदित है कि हमारे समाज मे स्त्रियों की स्थिति दयनीय है। पुरूष सत्तात्मक समाज ने नारी को दबाकर रखा है। जहाँ तक दलित नारी की बात है तो कहा जा सकता है कि वह दोहरे अभिषाप को झेलती है- एक तो स्त्री होने का, दूसरा दलित स्त्री होने का । इन तीनों आत्मकथाओं पर पुनीता जैन ने गहन समीक्षा प्रस्तुत की है। ‘दोहरा अभिशाप’ कौशल्या बैसन्त्री की पहली दलित स्त्री आत्मकथा है। इसमें उन्होंने अपनी शापग्रस्त जिंदगी की विस्तृत दास्तान प्रस्तुत की है। भारतीय समाज में दलित नारी की स्थिति बदतर है। भारतीय समाज मे ंदलित होना शाप है तो दलित स्त्री होना दोहरा अभिषाप है। दलित जीवन में गरीबी, पीड़ा, घुटन एवं अपमान है, उन सबका जीवंत चित्रण इस आत्मकथा में है। डाॅ. जैन लिखती है - ‘‘एक दलित स्त्री के आत्मसंघर्ष को साहित्यिक मानदंडों से नहीं वरन् संवेदनशीलता से देखने का आग्रह यह आत्मकथा करती है। साथ ही यह आग्रह स्त्री की लैंगिक व जातिगत पहचान से अलग मनुष्य रूप में देखने का भी है।’ ’ पुनीता जी ने इस आत्मकथा को दोहरे उत्पीड़न की व्यथा-कथा कही है।

डाॅ. सुशीला टाकभोरे लिखित ‘षिकंजे का दर्द’ अपने आप में एक बहुआयामी परिष्कृत कृति है। इसमें उन्होंने तीन-तीन पीढ़ी के दलित नारी समुदाय के जीवन यथार्थ को बड़ी शिद्दत के साथ खोलकर रख दिया है। यहाँ वर्ण (जातिभेद) एवं पितृसत्ता (लिंगभेद) के वर्चस्व के अनगिनत-अदृष्य-अबूझ षिकंजों में कैद नारी की मुक्ति का प्रबल स्वर सुनाई देता हैं। समीक्षक ने इसका अच्छा आस्वाद कराया है। सुशीला जी ने समाज को उसकी सच्चाई बताने के उद्देष्य से यह आत्मकथा लिखी है ऐसा उन्होंने स्वीकारा है। गौरतलब दलित जाति का पुरूष घर में स्त्री के प्रति सामंतवादी, ब्राह्मणवादी प्रवृत्ति ही रखता है। वस्तुतः यह आत्मकथा दलित संदर्भ में ही नहीं, कामकाजी षिक्षित महिलाओं की वास्तविक स्थिति को समझने की दृष्टि से भी महत्त्वपूर्ण है । षिकंजे का सामना करते हुए स्त्रियों के प्रति मानसिकता में बदलाव लाने के उद्देष्य से सुशीलाजी ने कलम उठायी है। आत्मकथा में उच्च शिक्षित सभ्य समाज के मन में ‘जाति’ के आग्रह के कई संस्मरणात्मक चित्र कथा में उजागर किए है। आत्मकथाकार सुशीलाजी ने अपनी

पीड़ा में मानव-पीड़ा के निदान की कोशिश कर तमाम शिकंजों का अतिक्रमण करती है। वाकई यह एक महत्त्वपूर्ण आत्मकथा है।

डाॅ. डी.आर. जाटव कृत 'मेरा सफर' , मेरी मंजिल' को पुनिता जी ने अंबेड़कर दर्शक को समर्पित चिन्तन-यात्रा कहा है। प्रस्तुत आत्मकथा एकनिष्ठ अंबेडकरवादी के रूप में सामने लाती है। असल में यह आत्मकथा उनके निजी जीवन की घटनाओं, संस्मरणों तक सीमित न रहकर लेखक के वैचारिक दृष्टिकोण, चिंतन को साधनेवाली यात्रा-कथा है। आत्मकथाकार जाटव जी दर्षनषास्त्र के प्राध्यापक रहे है इसलिए इस आत्मकथा की भंगिमा भी गहन-गंभीर व चिंतनषील है। डाॅ. पुनीता जैन ने इसकी गहन समीक्षा करते हुए कई पक्षों को हमारे सामने रखने का प्रयास किया है।

सूरजपाल चैहान एक सशक्त दलित हस्ताक्षर है। उनकी आत्मकथा के दो भाग 'तिरस्कृत' (2002) तथा 'संतप्त' (2006) सामने आएं हैं। दोनों भाग आपबीती का आईना है। 'तिरस्कृत' में अधूरे छूटे कुछ कथा सूत्र बाद में 'संतप्त' में अभिव्यक्त हुए हैं। समीक्षक ने यहाँ 'तिरस्कृत' एवं 'संतृप्त' की दलित अस्मिता एवं सामाजिक परिप्रेक्ष्य में जाँच-पड़ताल करने का स्तुत्य प्रयास किया है। दलित आत्मकथाएँ जातिवादी अपमान, उत्पीड़न, शोषण के हर पक्ष को रेखांकित करती हैं। दलितों का जीवन अभावग्रस्त रहा हैं इस आत्मकथा में भी भूख से संघर्ष, जूठन पाने के लिए माँ द्वारा कठिन परिश्रम प्रारंभ में ही देखने को मिलते हैं। भोजन, वस्त्र एवं छत जैसी प्राथमिक जरूरतें हमेषा दलितों से दूर रही। आत्मकथा के दूसरे भाग- 'संतृप्त' की भूमिका में काषीनाथ सिंह ने सच कहा है कि- 'तिरस्कार की पीड़ा महसूस करनी है तो 'संतृप्त' पढ़िए और उसकी वजहें जाननी हो तो 'तिरस्कृत' पढ़िए।' सवर्णों ने अपने स्वार्थ के खातिर जाति, धर्म की व्यवस्थाएँ गढ़ीं । भूख, रोटी, रहने की जगह के संघर्ष के दौरान आत्मकथाकार सूरजपाल चैहान का बचपन मानव समाज के कितने स्याह पक्ष से गुजरता है। इसके अनेक चित्र इस आत्मकथा में प्रस्तुत है।

मराठी एवं हिन्दी साहित्य की पहचान बनाने में आत्मकथा लेखन की भूमिका बड़ी महत्त्वपूर्ण है। श्यौराजसिंह बेचैन की आत्मकथा ' मेरा बचपन मेरे कंधों पर' की समीक्षा करते वक्त पुनीता जी ने बेचैन के जीवन संघर्ष के सभी पक्षों को उकेरा है। वैसेे तो सभी दलित आत्मकथाओं में आत्मकथाकारों के बचपन की कचोट देने वाली दर्द भरी तस्वीरें उभरी हुई हैं, किन्तु दलित बालमानस का हृदयस्पर्शी निरूपण करने वालांे में श्यौराजसिंह 'बेचैन' का कोई सानी नहीं है। इस कृति में कई मोर्चो पर जूझ रहे दलित बालक के घाँव एवं पीड़ाएँ एक-एक पृष्ठ पर नजर आती हैं। वस्तुत दलित आत्मकथाकारों की 'स्व' की यात्रा में संपूर्ण दलित समाज का यथार्थ चित्र उजागर हुआ है। हिन्दू समाज व्यवस्था, वर्ण व्यवस्था की वर्चस्ववादी प्रवृत्ति के दमनकारी हथकंडे यहाँ निरूपित हुए हैं। यह आत्मकथा, गरीबी, अनाथ, पिछड़ों, बच्चों के लिए प्रेरणादायक है। समीक्षक ने इसे 'दलित बाल श्रमिक का आत्मसंघर्ष कहा है। इस आत्मकथा के संबंध में लेखिका का कथन है - भूख एवं गरीबी इस आत्मकथा के ऐसे दो बीज शब्द है, जो इस

कथा के प्रत्येक पात्र के जीवन को संचालित करते है। ..... यह आत्मकथा जातिवादी मानसिकता को आत्मनिरीक्षण करने और अन्याय, शोषण के विरूद्ध अपनी स्पष्ट पक्षधरता उजागर करने का आह्वान करती है।

तुलसीराम कृत 'मुर्दहिया' आत्मकथा ने काफी प्रसिद्ध प्राप्त कर ली है। इसे वर्ष 2010 की दलित साहित्य की सबसे महत्वपूर्ण उपलब्धि कहा जायेगा। 'मुर्दहिया' लेखक की जन्मभूमि है। आत्मकथा मुर्दहिया के संबंध में पुनीता जैन का यह कथन महत्त्वपूर्ण है- :मुर्दहिय' हिन्दी आत्मकथा साहित्य का महत्वपूर्ण पड़ाव है। जिसे केवल 'दलित साहित्य' के परिप्रेक्ष्य में नहीं, मानव की जीवट इच्छा शक्ति व संघर्ष यात्रा के रूप में आंकलित किया जाना उचित होगा। तुलसीराम जी की आत्मकथा का दूसरा भाग 'मणिकर्णिका' नाम से सन् 2015 में प्रकाषित हुआ है। मुर्दहिया की भाँति 'मणिकर्णिका' में भी सवर्ण विरोध, प्रतिरोध की ऊंची आवाज कहीं नहीं है। दोनों भागों की एक बात समान रूप से दिखाई पड़ती है कि गहरी मानसिक यंत्रणा एवं भावुक क्षणों मंे विपरीत परिस्थियों में आत्मकथाकार को संबल और दृष्टि देने और मार्गदर्षन करने में त्रिपटिक की कथाओं या अश्वघोष के बुद्ध चरित का हमेषा साथ मिला है। डाॅ. जैन लिखती हैं - ''मणिकर्णिका घाट-लेखक के लिए नई 'मुर्दहिया' थी।..... मणिकर्णिका का न केवल समाजशास्त्रीय वरन् मनोवैज्ञानिक अध्ययन भी दलित समाज को उसके इतिहास से मुक्त करने, उसमें परिवर्तन की दिषा तय करने में उपयोगी सिद्ध होगा।' ' 'मणिकर्णिका' 'हमें आगाह करती है, 'एक संवेदनषील मनुष्य की तरह समाज मे ंचल रही शोषण प्रक्रियाओं को समझते हए उनसे निरंतर संवाद स्थापित करना होगा।' वस्तुतः 'मणिकर्णिका' तुलसीराम के जीवन-संघर्ष की ऐसी महागाथा है जिसमें भारतीय समाज की अनेक संरचनाएँ स्वतः उद्घाटित हो जाती है। उपरोक्त दलित आत्मकथाओं ने साहित्य में एक नये विमर्ष का सूत्रपात किया है।

समीक्ष्य ग्रंथ में पुनीता जैन ने उपरोक्त चर्चित आत्मकथाओं के अतिरिक्त मैं भंगी हूँ- भगवानदास, अपने अपने पिंजरे - मोहनदास नैमिषराय , झोपड़ी से राजभवन - माता प्रसाद, नागफनी - रूपनारायण सोनकर, 'तिरस्कार' - के नाथ, एक भंगी कुलपति की अनकही कहानी- प्रो. श्यामलाल, इंसान से ईष्वर तक, 'मेरे मन की बाइबिल' , रूकी हुई रोशनी (तीन भाग)- नवेन्दु महर्षि, घुटन - डाॅ. रमाषंकर आर्य, मेरी पत्नी और भेड़िया - डाॅ. धर्मवीर, मेरा अतीत- संतराम आर्य, 'दुःख-सुख के सफर में - उमेश कुमार, गोबरहा- विष्वनाथ राम, अपनी जमीं अपना आसंमा आदि आत्मकथाओं की विस्तृत समीक्षा की हैं। यह समीक्षात्मक पुस्तक लेखिका ने 'मुर्दहिया' को समर्पित करते हुए लिखा है- ''यही वह दलित आत्मकथा है जिसने अपनी घनीभूत संवेदना और करूणा से मुझे झकझोर दिया । लेखक की भावभूमि पर स्वयं को खड़ा करने तथा उस मर्मान्तक पीड़ा की अनुभूति ने मेरी कलम को भारतीय सामाजिक व्यवस्था में दलित की सनातन पीड़ा को विस्तार से समझने हेतु विवश किया। यही से हिन्दी की प्रत्येक उपलब्ध दलित आत्मकथा के भीतर उतरने की यात्रा प्रारंभ हुई।' ' पुनीता जी ने उक्त तमाम

आत्मकथाओं की भाषा-षैली, वाक्य विन्यास, आत्मकथाओं में विन्यस्त लोक-शब्दों पर भी प्रकाश डाला है।

पुनीता जैन की 'हिन्दी की दलित आत्मकथाएँ- एक मूल्यांकन' बड़े परिश्रम पूर्वक लिखी गई वृहदाकार किताब है। जो पाठकों-षोधार्थियों -विद्यार्थीयों एवं अध्यापकों, कमोवेश सबके लिए उपयोगी हैं। इस पुस्तक के लेखन मे ंपुनीता जी की सबसे बड़ी विषेशता यह है कि अब तक प्रकाषित सभी दलित आत्मकथाओं पर विवेचन किया हैं और वह भी सकारात्मक दृष्टि से। वे दलित साहित्य के सामान्य पक्षों एवं उसकी विषेशताओं को बखूबी पहचानती है और उन्हें उजागर करने में सफल रही हैं। इस पुस्तक के प्रकाशन पर मैं उन्हें बधाई देता हूँ और आषा करता हूँ कि उनकी कलम निरंतर चलती रहे । हर वर्ग के पाठक द्वारा इसका स्वागत किया ही जाना चाहिए।

पुस्तक: हिन्दी दलित आत्मकथाएँ एक मूल्यांकनः
लेखकः पुनीता जैन
प्रकाशनः सामयिक प्रकाशन, नई दिल्ली
पृष्ठ-352, मूल्यः 300/-
वर्ष 2018 समीक्षा: डाॅ. भाई धीरज वणकर
अध्यक्ष हिन्दी विभाग
बी.डी. काॅलेज,
दीनबाई टावर के सामने,
लाल दरवाजा, अहमदाबाद,
गुजरात- 380001
(मो.) 9638437011

कृपया रचनाकार को मेल भेज कर अपने विचारों से अवगत करायें